# संत सुखी विचरंत मही

ओम तत्सदात्मने नमः

**'एक व्याधिबस नर मरै, ये असाधि बहु व्याधि।**
**संतत पीड़हिं जीव कहं, सो किमि लहै समाधि।।'**

व्याधि कहते हैं शरीर की बीमारियों को, आधि कहते हैं जो मन में इच्छाएं लगी हैं, कल्पनाएं लगी हैं, चिंताएं लगी हैं। तो इस तरह से शरीर की परेशानियाँ व्याधि, और मन की परेशानियाँ आधि कहलाती हैं। मन से जो मायिक संकल्प हों, बुद्धि से जो निश्चय हो, अहं से अहंकार हो, ये भी आधि के अंतर्गत आते हैं। और व्याधि है, शरीर के रोग। किसी किस्म के रोग हों। इन शरीर के रोगों से ज्यादा खतरनाक होते हैं मन के रोग। गोस्वामी जी ने इन्हें मानस रोग कहा है। इन आधियों और व्याधियों के वशीभूत होकर जीव, भगवान के सान्निध्य में होते हुये भी उसके सान्निध्य से छूट जाता है। इन्हीं आधियों-व्याधियों में फंसकर, अपने स्वरूप को भूल जाता है। जीव-धर्म में आकर जीवन से प्रेम रखने लगता है। और परमात्मा से विमुख हो जाता है। उसी का अंश उसी से अलग हुआ। संसार रच लेता है। यह कैसे होता है? तो यह नाभिकमल है, आकाश। हाँ इसका सबसे अच्छा उदाहरण वह भजन है -

प्रथम ओम् से शब्द हुआ है सो आकाश कहाया।

और फिर इसी क्रम से वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी ये पांच तत्व बने।

तो ये पांच तत्व और तीन गुण या ब्रह्मा, विष्णु, महेश। एक पालन करने वाला, एक पैदा करने वाला और एक संहार करने वाला, यह जो आठ तत्व की मूल प्रकृति तैयार हो गई, यह प्रकृति, ईश्वर का संविधान बन गई। जीव इसमें बंधा है। अब यह जीव नहीं जान सकता, कि मैं इससे कैसे मुक्त हो सकता हूँ। तोता और बंदर की तरह बंधा है, भ्रमवश।

**'सो माया बस परयो गुसाईं। बंध्यो कीर मर्कट कीनाईं।।'**

जैसे किसान धान के खेत में, तोता को पकड़ने के लिए, एक लकड़ी गाड़ देता है, और उसमें बांस की एक पोली बनाकर डाल देता है। और जब तोता आकर उस पर बैठता है, तो पोली घूम जाती है। तोता उल्टा होकर टंग जाता है। पोली को छोड़ता नहीं। छोड़ने का ख्याल ही नहीं रह जाता। क्योंकि उसे इस स्थिति में होने का सेंस ही नहीं है, दिमाग में उसके। उसे भ्रम हो गया, कि मुझे यह लकड़ी पकड़े हुये

है। यही मिथ्या भ्रम भीष्म है। इसको जल्दी कोई नहीं जीत सकता। हाँ। भ्रम किसे कहते हैं? झूठे में सही की प्रतीति का नाम भ्रम है।

**'रजत सीप मह भास जिमि, जथा भानुकर वारि।**

**जदपि मृषा तिहुंकाल मह, भ्रम न सकइ कोउ टारि।।'**

इसतरह अपने ही भ्रम में परेशान हैं सब। इस महारोग की दवा सद्गुरुओं के पास है। गोस्वामी जी कहते हैं - सद्गुरु वैद वचन विश्वासा। संयम यह न विषय कै आसा।। सही बात को लोग समझते नहीं। समझते हैं तो मानते नहीं। अब भक्ति करना है तो ईश्वर, वहीं हृदय में लेना पड़ता है, और तभी साधक में सुधार होता है। बाहर तिलक मुद्रा, पूजा पाठ भर से काम नहीं चलता। लेकिन उसमें जब क्षमता नहीं आती, योग्यता नहीं होती, और उससे जब कहा जायगा, तो सही बात पर भी उसको बुरा लग जायेगा। वह समझेगा कि इनका कुछ स्वार्थ है, इसलिए ऐसा कहते हैं। इसको दुरुपयोग कहते हैं। वैद्य से दवा ले ली और सेवन किया नहीं, संयम किया नहीं तो रोग कैसे जायगा?

अब रामायण तो पढ़ते हैं। सभी कहते हैं-रामायण का पाठ करो, ज्ञान हो जायेगा। गीता का पाठ करो, ज्ञान हो जायेगा। ज्ञान कैसे हो जायगा ? जब तुम्हारे भीतर तो क्रिया होनी नहीं है-गीता का रोज पाठ कर लेना है। चित्त की गति बदलनी नहीं। रसास्वाद लेना ही है। बेइमानी का स्वाद लेना ही है। कैसे काम चलेगा? ये सब बातें बहुत वैसी हैं। इसलिए-हर आदमी के लिए बताना ठीक नहीं रहता।

**"आरत अधिकारी जहं पावहिं। गूढ़उ तत्व न साधु दुरावहिं।"**

जो सही पात्र हो, इसको समझने वाला हो, उससे कहा जाय तो ठीक रहता है। अब यहाँ, इतने बैठे हैं। सब एक जैसे तो हैं नहीं। बताने वाला तो एक ही जैसी बात करेगा। कैसे समझ में आयेगा? कोई थोड़ी सी बात पकड़ पा रहा है। कोई पकड़ते हुये भी, नहीं पकड़ पा रहा है। कोई इन बातों को समझता ही नहीं। कोई समझ रहा है, थोड़ा। लेकिन कर नहीं पाता। पहले ऐसा था, कि ब्राह्ममुहूर्त तीन चार बजे से मानते थे, और दिन निकलने तक-यह सबसे शुद्ध समय होता है। जानते हो, भजन कब होता है? जब आकाश शुद्ध मिले, तब मन कहीं नहीं जायेगा। आकाश शुद्ध कब होता है? रात बारह बजे तक आदमी जाग सकता है, कोई काम पर लगा हुआ है। दो बजे तक जाग सकता है। लेकिन ब्राह्ममुहूर्त में स्वयं नींद आ जाती है सबको, उस समय आकाश शुद्ध मिलता है। उस समय बैठ जाओ-ब्राह्ममुहूर्त में भजन करना चाहिए तो सही ध्यान लगेगा। सही मन रुकेगा। मन को ध्यान में

लगायें, ध्यान में लगेगा। जप में लगाएंगे, जप में लग जायेगा। और जैसे उसे खड़ा करेंगे, खड़ा हो जाएगा। क्योंकि तब उसको खींचने वाले संकल्प नहीं हैं। और जब सब जाग गये और फिर तुम बैठे दिन में, तो फिर मन नहीं लगेगा। तमाम छनछन कर संकल्प दौड़ रहे हैं। एक नाड़ी है एक्सटर्नल (बाहरी), जो तमाम संकल्पों को फेंकती है। एक नाड़ी इंटरनल (भीतरी), जो बाहर के संकल्पों को पकड़ती है। कभी शान्त नहीं बैठती–और इतनी स्पीड हो जाती है इसकी, जैसे गाड़ी सौ किलोमीटर की स्पीड से दौड़ती है। अब तुम उसे रोकना चाहते हो। जैसे कोई लड़का तेजी से दौड़ रहा है। वह एकदम कैसे रुकेगा? वह तो ब्रेक लगाते–लगाते कहीं दूर जाकर रुकेगा। इसलिए मन को रोकने का सबसे अच्छा तरीका यह है, कि पहले श्वासा का जाप करो। श्वासा में नाम लो। नाम से मन की गति धीमी हो जायगी। श्वासा को तो चैन नहीं है, लेकिन मन इतना पाजी है, कि दुनिया के विषयों में दौड़ रहा है। उसे लगा दो, श्वासा में। लेकिन जपे न, सुने केवल–अजपा इसे कहते हैं। सुने खाली। तो उससे मन की गति धीमी होगी। धीमी होते–होते क्या होगा, कि एक खुमारी जैसी आयेगी। नशा जैसा आयेगा। और जब नशा आने लगे, तो फिर ध्यान करो। अपने इष्ट को देखो। अपने मन से देखो और अपने को समर्पित कर दो। कि भगवानमैं आपका हूँ। मैं आपको ही देखना चाहता हूँ। मैं अपने इस मन को आपको सौंपना चाहता हूँ। यह मेरे वश का नहीं है, इसलिए मैं हार कर उसे आपको दे रहा हूँ। आप में क्षमता है, आप इसे पकड़ सकते हो, आप इसे बांध सकते हो। मेरी समझ में यह आया है कि आपके पास ताकत है। इन काम, क्रोध आदि बलवानों को मैं आपको देता हूँ। आप इन्हे पकड़ लीजिए। और इन्हें आप अपने पास रखिए। मेरे पास नहीं–ये मेरी हालत खराब कर देंगे। गोस्वामी जी भजन में कहते हैं –

''मैंने आप से पैसा नहीं लिया। मैंने स्वयं अपने आपको, आपके सामने समर्पण कर दिया–अब आप चाहे मुझे काम से मरवाइये, चाहे क्रोध से कुटवाइये, मैं आपका हूँ। आप की ही नाक कटेगी, आपकी ही बदनामी होगी, अगर मेरी बेइज्जती होती है। इसलिए अब आप जानिये, मेरे पास कुछ नहीं रह गया है। मैंने अपने को समर्पण कर दिया है। मैं आपको समर्पित हूँ – सरेन्डर हूँ''। कितने गंभीर भाव हैं ? तो इस प्रकार कोई साधक, कंठ गदगद होकर और हृदय से द्रवित होकर प्रार्थना करे तो यही शुद्ध तरीका है।

**'जनम जनम लगि रगर हमारी।। बरउं शंभु नतु रहउं कुमारी।।'**

अब हमको शंकर चाहिए। कुछ भी हो जाय। संप्तर्षियो ने पार्वती की परीक्षा लिया, बहुत डिगाने पर भी अडिग रहीं। ऐसी दृढता हो साधक में कठिन परीक्षाओं में भी फेल नहीं हो पाये, ऐसा साधक हो। जिद करनी पडेगी। रगड़ करनी पड़ेगी।

'जनम जनम लगि रगर हमारी'। जनम जनम–लिमिट ही खतम कर दी। ऐसा जो प्रेम रुपी पार्वती और सत् जो आत्मा है शंकर। उसमें जब प्रेम हो जाय हमारा, वही भजन है। वही लगन है। साधक के हृदय में जो प्रेम है, भगवान के प्रति, वही पार्वती है। और जो सत् है–तीनों कालों में एकरस, शुद्ध, बुद्ध, अजन्मा, अरूप, अलख अविनाशी, ऐसा जो सत्य है, वही शंकर है। भगवान है। इष्टदेव है। गुरु है। आत्मा है। उसी के लिए मचल जाओ। रोओ–गाओ। मर मिटो। ऐसा है, यह रास्ता। इसके लिए तीव्रतर वैराग्य होना चाहिए–साधक में। वैराग्य काम करेगा। तीव्र तर वैराग्य।

प्रथम श्रेणी, द्वितीय, तृतीय श्रेणी होती हैं। तो धीमा वैराग्य, तीव्र वैराग्य, तीव्रतर वैराग्य। श्रेणी बन गई। अनुराग अलग है। वैराग्य अलग है। अनुराग उसको कहते हैं, जब करुणा आए। अपने भगवान के लिये, अपने इष्टदेव के लिये, हमको रुलाई आए। करुणा आए। कि हम इतने गये गुजरे हैं कि भगवान हम पर दया नहीं करते, हम पर रहम नहीं करते। हममें इतनी बड़ी खराबी है। भगवान, हे इष्टदेव, मैं गया गुजरा हूँ। मुझ पर दया करो, मुझे अपना लो। इस तरह से रोमांच हो जाय, कंठ गदगद हो जाय, अश्रु धारा बहने लगे–यह जो प्रेम की परिसीमा है, उसे अनुराग कहते हैं। लेकिन यह बहुत समय तक निरंतर नहीं बना रहेगा। कोई आदमी हो, खूब रोए, खूब करुणा करे, लेकिन वह लगातार रोता ही रहे–यह नहीं हो सकता। अनुराग, वेग या फोर्स के साथ आता है। और उस वेग के समय, जो प्राप्ति उसे होती है, वह कान्टीन्यू (लगातर) रहने लगे। अनुराग में भी रहे, अनुराग नहीं है तो भी रहे, बोलने में भी रहे, खाने में भी रहे, सोने में भी रहे, उसका नाम वैराग्य बन जाता है। और जब वह एकांगी होता है, तब वह अनुराग होता है। जब बंदर लोग अपना–अपना बल बखान कर रहे थे, समुद्र लांघने के लिये, तो किसी ने कहा हम दस योजन उड़ान भर सकते हैं। किसी ने कहा हम बीस योजन जा सकते हैं, किसी ने कहा पचास योजन। और अंगद,

**"अंगद कहइ जाऊं मैं पारा। जिय संसय कछु फिरती बारा।।"**

मैं सौ योजन समुद्र के पार जा सकता हूँ। लेकिन लौटने में शंका हो जाती है। यह है अनुराग, अंगद। और फिर सबने हनुमान का गुण बखान किया। आप

महाबली हैं, आप देश काल की सीमाओं से परे हैं, आप सब कुछ कर सकते हैं– आप सार्वभौमिक हैं। आप दिन में, रात में, सुबह में, शाम में, दुख में, सुख में, हर्ष में अमर्ष में हर समय एक सा रूप है आपका। तो आपको तो कोई प्राब्लम नहीं होना चाहिए, आप जा सकते हैं, आ सकते हैं। आप अपने रूप का ख्याल करिये। हनुमान को अपने बल का स्मरण नहीं रहता था। कहते हैं कि जब यह पैदा हुआ था तो इन्द्र ने बज्र मार दिया, तो इनकी माता अन्जनी ने हंगर स्ट्राइक (भूख हडताल) कर दिया और हनुमान ने सूर्य को निगल लिया था, तो अंधेरा हो गया। सब देवता प्रार्थना किये, तब सूर्य को छोड़ा, तो सबने आशीर्वाद दिया। अग्नि ने कहा कि अग्नि तुम्हें जलायेगी नहीं, धर्मराज ने कहा अजर अमर हो जाओ। किसी एक अपरिचित ने आशीर्वाद दिया था कि तुम्हें अपनी ताकत का पता नहीं रहेगा। तुम्हें कोई याद करायेगा तब याद आएगा। तो हम तुमसे पूछते हैं, कि वह सबसे बड़ा देवता कौन था जो हनुमान को यह आशीर्वाद दे गया था। बताओगे? तो सबसे बड़ा देवता वह देवी थी। उसने कहा था कि जब तुम्हें याद आएगा तो अहंकार–ईगो होगा और याद नहीं आयेगा तो अहंकार नहीं आएगा। इसलिए हनुमान को स्मरण नहीं रहता था अपनी ताकत का, अपने स्वरूप का। तो ईश्वरीय–जानकारी का नाम है, जामवंत। बोले, हनुमान तुम याद करो। तुम्हारे अंदर बड़ी ताकत है। तुम याद करो, अपने स्वरूप को। तुम सब कर सकते हो। तब उनको याद आया। फिर समुद्र के पार गये। तो अब यह समझ में आ गया होगा कि शुरू में साधक अपने इष्टदेव से रोता–गाता है। अनुराग पैदा करता है। लेकिन कुछ टाइम बाद, अनुराग सार्वभौमिक हो जाय, इन्लार्ज हो जाय, सर्वत्र हो जाय, सब परिस्थितियों में हो जाय, दिन में, रात में, सुख में, खाने में, चलने में जब सर्वत्र अनुराग बराबर रहने लगे, तो उसका नाम है वैराग्य। हनुमान–हनन करे जो मान का। यह अनेक बड़े–बड़े योद्धाओं को परास्त कर सकता है। अहंकार–अहि रावण को मार सकता है। इच्छा रूपी अक्षय कुमार को मार सकता है। वैराग्य में बहुत बड़ी क्षमता है। तो अंगद और हनुमान ये दो बड़े बलवान बताए गए हैं। साधना में अनुराग आना चाहिए। गोस्वामी जी कहते हैं –

**मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा।**

ऐसे रोते–रोते भगवान को मनाओ, कि द्रवित हो जायं। करुणा आ जाय। और जब भगवान का सहारा मिल जाय तो फिर ललकार दो माया को–

**'मैं तोहि अब जान्यो संसार।**

**बांधि न सकसि मोहिं रघुवर के बल प्रगट कपट आगार।।'**

मैं तुझे अब जान गया हूँ संसार। तू मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। यह ईगो आ गया। लेकिन यह शुद्ध ईगो है। इसमें भगवान बोल रहा है। इसका दोष नहीं लगता। एक अशुद्ध ईगो होता है, एक शुद्ध ईगो होता है।

गोस्वामी जी क्या कहते हैं–

**'बांधि न सकसि मोहिं रघुपति केबल'**

अब मुझे भगवान का सहारा मिल गया है। अब मैं सब कुछ कर सकता हूँ। कबीर जब इस अवस्था में पहुंचता है। तो कहता है–

**'ठगिनिया क्या नैना चमकावै।**
**कबिरा तेरे हाथ न आवै।।**
**रूपा करके रूप दिखावै सोना कर चमकावै।**
**गले में डाल तुलसी की माला तीन लोक भरभावै।।'**

मैं जानता हूँ (ऐ माया) तुझमें क्या कला है, कि ईश्वर का भजन करने वालों को पटक देती है तू। रूपा करके रूप दिखाती हो, सोना करके चमकाती हो अनेक तरह के प्रलोभन – लालच दिखाती है। लेकिन अब मैं तेरे हाथ आने वाला नहीं। तो एक ऐसी अवस्था आती है। जिसमें साधक को अपनी प्रगति ज़रूर मालूम पड़ती है। लेकिन विषयों से विरत रहकर सही ध्यान भजन करे तब।

अब जैसे तुम अपने इष्टदेव को अपने हृदय में देखते हो, तो इसका यह मतलब नहीं कि हमने बताया तो हृदय में देख लो, और बाहर फिर माया को देखो। हृदय में देखने का तात्पर्य यह होता है कि सब जगह फिर वही वही हो जाय। जिस तरफ आंख जाती है, जो भी दिखाई पड़ता है और ध्यान से देखते हैं तो इष्टदेव उसमें दिखाई पड़ जाते हैं। इधर देखें, उधर देखें। जिस तरफ यह दृष्टि उठती है उधर हम अपने इष्टदेव को खड़ा देखें। तो फिर यह माया बेवकूफ बन जायेगी। वह तो कोई रूप ले आयी विषय के लिये और हम झट अपने गुरु बाबा को खड़ा कर दें, कि ले दर्शन कर। जहां-जहां मन जाय, वहां वहां अपने गुरु को धारण करते चले जाओ। यह है धारणा। उसी का ध्यान बन जायेगा और फिर ध्यान से समाधि-सम के आदी बन जाओगे। और अगर तुम्हारा ध्यान कमजोर हुआ तो आंख मूंदकर तो भगवान को देखते हो, और बाहर जब हो गये तो वही दुनिया। ऐसा नहीं। हम यह भी कर लें, वह भी कर लें। हम हंस भी लें, रो भी लें। दोनों काम एक साथ न होंगे।

**'दोउ न होहिं इक संग भुआलू।**

**हंसब ठठाइ फुलाउब गालू।। '**

अगर दो नावों में पैर रखोगे तो मारे जाओगे। इसलिए तुम भोजन बनाओ, सबसे बात करो, लेकिन तुम्हारी नज़र में नाचता रहे तुम्हारा गुरूबाबा। तुम्हारा इष्टदेव। उसे नहीं हटना चाहिए। और अगर उसे उठा कर इधर रख दिया और तुम फ्री हो गए, और रूप के पीछे दौड़ पड़े, सुगंध के पीछे दौड़ पड़े, स्पर्श के पीछे दौड़ पड़े तो फिर मार खा जाओगे। इसलिए हम कहते हैं, कि ध्यान तुम्हारा तीव्र गति वाला होना चाहिए। पिपीलिका चाल, पशुचाल, विहंग चाल, मुनमुनिया चाल। ये चार तरह की गति होतीहै, साधना में।

पिपीलिका चाल वाली साधना काम नहीं करेगी। विहंग चाल होनी चाहिए। यह चिड़िया यहाँ से उड़ी, और वहाँ पहुँच गयी। तुम्हारा इतना तीव्र ध्यान होना चाहिए, कि हृदय में देख ले और बाहर मन निकले तो यह पुस्तक नहीं दिखाई पड़े, गुरु बैठे हैं। इधर देखते हैं तो, इधर यह तकिया नहीं है। गुरु बाबा बैठा है। उधर पाण्डेय जी याद आये, तो गुरु बाबा ही दिखाई पड़े। इधर पौराणिक जी याद आये, तो गुरु बाबा ही दिखायी पड़े। सर्वत्र गुरु बाबा आ जायेगा, अगर तुम्हारा ध्यान सही है। अगर ध्यान सही नहीं है, तो फिर हार खा जाओगे। फिर ये असर कर जायेंगे। कमजोर साधन माना जायेगा। इसलिए ऐसा साधन होना चाहिए। तीव्रतर वैराग्य होना चाहिए। वो हनुमान की बात वहाँ नहीं छोड़ दिये, हनुमान की ही बात हम कर रहे हैं। हनुमान बन्दर नहीं है। हनुमान कहते हैं, वैराग्य को। इतना तीव्र वैराग्य होना चाहिए, उसको उठाओ। पहले अंगद तैयार करो। अनुराग आये। फिर वह अनुराग, बढ़ते-बढ़ते वैराग्य का रूप ले ले। वैराग्य इतना तीव्र हो जाये कि और कोई चीज़ नहीं दिखायी दे, बस लक्ष्य दिखाई दे। तब तुम हनुमान हो सकते हो। तब तुम हृदयरूपी हिमालय से, संजीवनी-अमृत पैदा कर सकते हो। तब तुम लक्ष्मणरूपी विवेक को जीवित कर सकते हो। तब तुम जीते हुए मन रुपी गरुण के द्वारा राम लक्ष्मण को नागपाश से छुड़ा सकते हो। नहीं तो बँधे पड़े रहेंगे। बँधे तो हैं ही, जब हम जिव्हा का कहना करते हैं, जब हम नेत्रों का कहना करते हैं- बँधे तो हैं ही। ये ज्ञान विवेक। इन्हें तब हम छुड़ा सकते हैं, जब तीव्र अनुराग हो, तीव्रतर वैराग्य हो। जहाँ-जहाँ हम देखें गुरु दिखाई पड़े। तब सब यह खत्म होने लगेगा। यह संसार सब गल-गल कर आकाश बनने लगेगा। यह संसाररूपी बरफ, ज्ञान की गरमी पाकर पिघलने लगेगा। और पिघलते-पिघलते यह परमात्मारूपी पानी बन जायेगा।

इसलिए साधक को हमेशा सावधान रहना चाहिए। पता नही कब कैसी बात आ जाय। ये कामादि विकार बडे प्रबल होते हैं। बड़ी बारीकी से मन के अन्दर प्रवेश करते हैं। काम, मेघानाद है। इसका अन्य राक्षसों जैसा भयानक रूप का वर्णन कहीं नहीं आया, न रामायण में न किसी ग्रंथ में। सब जगह साधारण मनुष्य जैसा। और है सबसे बलवान, बाप से चाचा से। इसका आकार बड़ा नहीं है, प्रभाव बड़ा है, इसकी क्षमता बड़ी है। उसकी लगन बड़ी है। तो जितने फोर्स से मन में काम वासना की लगन होती है, उससे चौगुने फोर्स से हमारी भक्ति में लगन होनी चाहिए। तब काम चलेगा। जितनी एक कामी आदमी की स्त्री के प्रति लगन होती है, उतनी से ज़्यादा हमारी अपने इष्टदेव की तरफ होनी चाहिए।

यही तो लिखा है गोस्वामी ने –

**'कामिहिं नारि पियारि जिमि, लोभिहिं प्रिय जिमि दाम।**

**तिमि रघुनाथ निरंतर, प्रिय लागहु मोहिं राम।।'**

ऐसी तीव्र लगन हो अपने इष्ट में तब, फिर वह काम करेगी। तो संसार से राग का त्याग हो जाय, वैराग्य हो जाय, भगवान में अनुराग हो जाय। सबसे हटकर मन हमारा इष्ट में लग जाय, तब इसे कहते हैं भक्ति।

**'या जग में जहं लगि या तन की प्रीति प्रतीति सगाई।**

**सो सब तुलसिदास प्रभु ही सों होहिं सिमिटि इक ठाई।।'**

अब हमारी तो पिपीलिका चाल है, और उसकी विहंग चाल है। एक चिड़िया उड़ी और यहाँ से वहाँ पहुँच गई। और यहाँ चल रहे हैं–धीरे धीरे। कहाँ काम चलेगा ? हमारी उसी स्तर पर गति होनी चाहिए, तब हम उसको जीत सकते हैं, तब हम इससे कामयाब हो सकते हैं। अब देखो साधक के अन्दर इसकी गतिविधि कैसे होती है।

काम मेघनाद क्या करता है ? एक तो उसके पास शक्ति है। बरछी है, उससे विवेक को लक्ष्मण को हनन करता है। और उसको जिन्दा करता है, वैराग्य रूप हनुमान। हृदय रूपी हिमालय और उसमें श्वासा रूपी संजीवनी में लगन करके– श्वासा को खड़ी करके जिंदा कर देता है। साधक के अन्दर फिर कभी यही काम, राम लक्ष्मण रूप ज्ञान विवेक को नागपाश में बांध देता है। तो फिर जब सद्गुरु के बताए हुए साधन से, वह मन का ट्रांसफार्म करता है। सर्प से गरुण के रूप, में तो फिर वह शंका रूपी सर्प को खा जायेगा। नागपाश कट जाएगा। हम बच जायेंगे (ज्ञान, विवेक बच जायेंगे) यह उसका मार्ग है, उपाय है। इसलिए मन को ठीक करना

है। देखते रहना है कि विषय के संकल्प इसे गंदा न करें। तो फिर एक ही तरीका है कि,

**'नारायण तू बैठ कर अपनो भवन बुहार।'**

तो महात्मा जो होते हैं वे हमेशा अपने में रमते हैं। अपने मन की खबर रखते हैं,बाहर कुछ भी आये परवाह नहीं। देखो एक महात्मा थे। खूब चमक दमक थी। मूड़ी मुड़ाए मूड़ी खूब चमकती थी। एक नदी के पास बैठ गये। जब बैठ गये, तो जो नाचगान वाले मसखरे होते हैं, उन्होंने देखा बाबा को। बोले आज मज़ा आ जायगा। बाबा जी की मूड़ी को बजाएंगे, मज़ा पड़ जायेगा। तो जब मजमा जुटा, तो वो मारे बाबा की मूड़ी में और नकल करे फिर मारे। बस ऐसे-ऐसे हंसाई बढ़ती गई। बड़ी देर तक होता रहा। बाद में उसने जूते से भी मूड़ी में मारा। जब आधी रात हो गई तो उसमें एक बड़ा आदमी कोई था। उठकर बाबा जी के पास आया। बोला, महात्मा जी! इस जोकर नकलची ने तो बड़ी ढिठाई किया। आपकी हँसी उड़ाई और आपकी बेइज्जती भी की। मुझसे नहीं देखा गया। और आप चुपचाप शांत बैठे रहे। कहिये तो, मैं इसकी पिटाई करा दूँ। तो महात्मा बोले, नहीं भैया। इसमें इसका दोष नहीं है। यह तो इस मेरे मस्तक का दोष है जो कभी गुरुजनों को, और किसी को नतमस्तक नहीं हुआ। इसलिए इसे इसके किये की सजा मिल रही है। अब यह फिर ऐसा न करेगा। इस तरीके से महात्मा बड़े क्षमाशील होते हैं, दयालु भी होते हैं। और सब सहन भी कर सकते हैं। तो यह ऐसा कुछ है, कि कुछ कहा नहीं जा सकता। इसलिए महात्माओं ने, बड़े-बड़े ऋषियों ने, इस संसार को अनिर्वचनीय कहा है। इसके विषय में कुछ  कहा नहीं जा सकता। इसलिए इसे देखते चलो। यह जैसा दिखाई पड़ता है, वैसा है नहीं। जो नहीं दिखाई पड़ता, वह है। जैसे यह पोल है। तो जो दिखाई पड़ता है, वह गल जाय, और जो नहीं दिखाई पड़ता, वह बन जाय। तब ठीक रहता है। त्याग करते चलो, लाइन पकड़ते चलो, सजातीय को बढ़ाते चलो, विजातीय को संकुचित करते चलो। फिर जब इन दोनों की रूपरेखा बनी। उसका विस्तार बढ़ा, इसका खतम हुआ। तो फिर दुनिया बदल जायेगी। फिर पैट बदल जायगा, सिग्नल मिल जायगा। तो गाड़ी आगे बढ़ जायगी। फिर वह दुनिया दूसरी हो जायगी, यह दुनिया दूर हो जायेगी।

तो जो भी चिंतवन रूपी यात्री, हृदय रूपी प्लेटफार्म पर आयें, उन्हें बाहर करते जाओ। वहाँ टिकने न पावें, प्लेटफार्म गंदा न करने पावें। इन्हें निकालते जाओ। तो भगवान का वास होगा। और इसमें कपट, क्रोध, मोह, लोभ, काम ये सब बसने पाए

तो विभीषण जीव की दुर्गति कर देंगे मार-मार कर। ये बहुत खतरनाक हैं, इसलिए इन्हें नहीं रखना है। निर्मल होना है-

**निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।**

जो हमारे मन में विचार (संकल्प) आएं, उन्हें बार-बार चिंतवन न किया जाय। उन्हें सोचते न रहा जाय। अगर उसे बार-बार हम चिंतवन करेंगे, तो उस दुर्गुण को (विषय को), खुराक मिलती चली जायगी। तो बलवान हो जायगा। तो सबसे अच्छा तरीका यह है, कि अगर हमारे अंदर बुरे विचार भूल से आ जायं, चाहे अंदर से आएं या बाहर से आएं। इन पर हमें सोचना नहीं। अगर अंदर से आएं, हम इसे ऐसे एडजस्ट करें, कि कोई पूर्व जन्म की ऐसी खराबी है, जो ऐसा जबर्दस्त प्रेशर डाल रही है। बरबस हमारे अंदर बुराई बनाने का प्रयास कर रही है। तो इसे हम अपने इष्ट की तरफ ले जायें। और कहें, कि हे भगवान! लगता है आप मेरी परीक्षा ले रहे हैं। मैं थोड़ा सा भजन के रास्ते में आगे बढ़ा हूँ, तो आपकी रुचि मेरे विषय में यह बनी है, कि यह साधक कैसा है? तो आपकी कृपा से ही, मुझे सफलता भी मिलनी चाहिये। बार-बार यह करो। इसका रिएक्शन होता है, जिससे कि संस्कार पनप नहीं पाते। तो एक तरीका तो यह है।

और अगर हमें बाहर से कोई बुराई आती है। हर प्रकार की बातें साधक पर आ सकती हैं। अनेक घटनाओं से होकर यह जीवन गुजरता है। और ये अनेक जन्म जन्मान्तरों के संस्कार समूह, सभी को पछियाये हैं-लगे हुये हैं। तो कदाचित बाहर से कोई बुराई आती है, तो समझना चाहिये कि यही टाइम है,जबकि मुझे संभलना है। जब कोई कुछ न करेगा, तब तो हम संभले संभलाए हैं। पर जब हमें कोई बुरा कहे, और हमें बुरा न लगे-यह साधक का अच्छा लक्षण माना जाता है, और साधक आगे बढ़ सकता है। रामायण में कहा गया है-

**'बूंद अघात सहंहि गिरि कैसे। खल के बचन संत सह जैसे।।'**

जो भी घटित होता है, संत साधक उसे ईश्वर की इच्छा जानकर ठीक मानते हैं और निश्चिंत निर्भय रहते हैं। प्रसन्न और सुखी रहते हैं

**'सम मान निरादर आदरहीं।**

**सब संत सुखी विचरंत मही।।'**

हम चाहें कि हम सुखी हो जायं, तो बगैर उसकी कृपा के कोई सुखी नहीं हो सकता। कोई चाहे कि हम दुखी हो जायं, तो बगैर उसकी कृपा के कोई दुखी नहीं हो सकता। दुख और सुख दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों एक हैं। न वह दुख

है, न वह सुख है। आदमी के अन्तःकरण में, आनुवांशिक यह प्रवृत्ति आ गई है, आनुवांशिक-परम्परागत, पिता से पुत्र को आई, पुत्र से नाती को आई-यह आनुवांशिक आ गई, कि हम एक को सही मान लिये, एक को गलत मान लिए। एक को अच्छी मानलिए, एक को बुरी मान लिए। और यह ठोंक-ठोंक कर ऐसे बिंध गई है, कि यह दिमाग से निकलने वाली चीज़ नहीं है। यह आनुवांशिक रूप ले चुकी है। हेरिडिटी (आनुवांशिकता) बन गई है। हम सुख चाहते हैं, इसलिए प्रयास करते हैं, कि दुख न आवे। सुख का आलिंगन करने लगते हैं। सुख का आनंद लेने लगते हैं। उसे हम स्पर्श करने लगते हैं। और जहाँ हम सुख को पकड़े, तहाँ बगैर दुख के सुख में सुख का ज्ञान होगा नहीं। तो दुख आकर प्रशस्त हो जाता है। अपने से आकर खड़ा हो जाता है। जब हम सुख का ज्ञान करते हैं, तो यह हो नहीं सकता। इसके लिए दुख ज़रूरी है। दुख के बिना सुख का भान कैसे होगा? इसलिए, ये एक दूसरे के पूरक हैं। महात्माओं की युक्ति से हम दुख से छूट सकते हैं। तरीका है छोड़ने का। जैसे दुख आ रहा है-तो हम डर जाते हैं। डरें न। कहें कि आओ दुख, हमारे पास आओ। हम तुम्हारा स्वागत करेंगे। तुम्हें परेशानी है-तुम हमारे पास आओ। खूब उसे बुलाएं, और प्रसन्न हों। प्रसन्नता व्यक्त करें। बस यही तरीका है। दूसरा आज तक कोई ईजाद नहीं हुआ। किसी ने, कोई रिसर्च नहीं किया इसमें। जब हम ऐसी कंडीशन में आ जाएंगे कि दुख आ रहा है, और हम स्वागत करने को बैठे हैं। उसे बुला रहे हैं। तो जहाँ वह सुनेगा-खड़ा हो जाएगा। क्योंकि वह जानता है, कि जहॉ मैं जाता हूँ, वहाँ रोना पीटना होता है, और यह हंस रहा है। यह पागल हो गया है क्या? कैसा आदमी है? यही सोचेगा। और वह अपना वह कर्तव्य करेगा। जो उसे करना है। क्या करेगा? कहेगा, कि मैं सुख बनकर आया हूँ। क्योंकि हंसने वाले के पास, दुख तो जा नहीं सकता। दुख तो रुलाई वाले के पास जायगा। हंसाई के पास जायगा, तो सुख बनकर जायगा, नहीं तो लौट जायगा। बस इतना है। दुख से बचने का यही एक उपाय है। संत के पास यह कला होती है इसलिए वह सदा सुखी रहता है। हमारे मन की दो तरह की वृत्तियाँ हैं- एक सजातीय और एक विजातीय। तो जब सजातीय संकल्पों के द्वारा विजातीय को जीत लिया जायगा तो विजातीय तत्वों का ट्रान्सफार्म होकर सजातीय बन जायेंगे। फिर जब सजातीयों को भी जीत लिया जाता है-त्याग का त्याग कर दिया जाता है, तब संकल्प रहित हो जाता है। इसकी प्रक्रिया यही है। जैसे हमारे अंदर बुराई और भलाई दोनो हैं। तो हमें चाहिये, कि जब हम साधना करें, तो इन दोनों में झगड़ा करा दें। तो साधक को जो उसके जीवात्मा की ताकत है, उसको दुर्गुण यूज न कर पाएं, सद्गुणों को एड (मदद)

दी जाय। सद्गुणों को मदद दी जाय। और जब सद्गुणों को मदद मिलेगी तो, दुर्गुण खतम हो जाएंगे और खतम होते ही, जो भी रही सही इनर्जी दुर्गुणों में प्रतीत होती थी, वह बदल कर सद्गुणों में आ जायगी। एक ही हैं, ये दो नहीं हैं–कि दुर्गुण खतम हुए, तो सद्गुण ये अलग। एक हैं। तो इस तरीके से दुर्गुण बदल कर सद्गुण बन जाते हैं। और सद्गुण का जब त्याग किया, तो दुर्गुण–सद्गुण से रहित–इनके सर्कुलेशन से बाहर हो जाता है। यह कला साधक नहीं जानता। यह अन्योन्याश्रय दोष से अलग है। मुर्गी के बगैर अंडा नहीं, और अंडा के बगैर मुर्गी नहीं–यह अन्योन्याश्रय दोष है। अब अगर तुमसे कोई पूछे कि पहले मुर्गी हुई कि अंडा, तो क्या बताओगे–पड़ जाओगे चक्कर में। यह अन्योन्याश्रय दोष है। वास्तव में मुर्गी और अंडा एक दूसरे के पूरक हैं। ये अलग नहीं हैं–एक हैं। लेकिन उसकी गैर हाजिरी में–परमात्मा की गैर हाजिरी में, हमें दो करके दिखते हैं। इसलिये यह दुनिया जैसी हमें दिखती है, वैसी है नहीं। यह दूसरे ढंग की है। वह कैसे हमारे सामने आए? यह खतम हो जाय। हाँ, फिर राइज हो गया, साधक उठ गया। इतना काम करना है। बस इतना काम करना है। इस तरीके से ये तो दोनों (अच्छा–बुरा) एक ही है। चाहे लोहे की बेड़ीपड़ जाय, चाहे सोने की पड़ जाय। बेड़ी सो बेड़ी। इसलिए साधक इन दोनों का त्याग करता है। भगवान तो सत्य का पक्षधर है। और संत जो है, वह सत्य–असत्य दोनों से परे रहता है। इसलिए भगवान, संत को अपने से बड़ा मानते हैं–

**"सातवं सम मोहि मय जग देखा।**
**मोते अधिक संत कर लेखा।।"**
**और, मोरे मन प्रभु अस विश्वासा।**
**'राम ते अधिक रामकर दासा।'**

उसी का भजन करते हैं। लेकिन उससे बड़े हो जाते हैं।

इसलिए अपने ऊपर आने वाले दुखों को स्वीकार करें, और सुख आवे तो उसका निरादर करें। ऐसी प्रकृति बनाना चाहिए। ऐसी जिसकी प्रकृति बन जाती है वह इस दुनिया से अलग हो जाता है। इस दुनिया की जो तस्वीर है, दुनिया का जो तरीका है, दुनिया की रहनी है, दुनिया की गति है, दुनिया का जो रवैया है– उसमें वह नहीं जाता। और दुनिया से जहाँ अलग हुआ, तहाँ उसको मार्ग ठीक मिल जाता है। इसलिए कृतित्व का सबसे बड़ा स्थान है, या क्षमता का सबसे बड़ा स्थान है। क्षमता कहो या कृतित्वता, ये दोनों मिलते जुलते शब्द हैं। इसलिए इनका बहुत बड़ा स्थान

इसमें है। जो कुछ बन जाय, वह तो अपने इष्ट को समर्पित कर दो, और जो न बने उसकी गलती स्वीकार कर लो। जो अपने ऊपर दुख आए उसका स्वागत करना सीखो औरजो सुख आए उसका निरादर करो। कि भाई तुम यहाँ कहाँ भटक कर आ गये-हम तुमको नहीं चाहते। हमारे पास तुम्हारे लिए कोई स्थान नहीं है, तुम यहाँ कैसे आए? इसलिए तुम वापस जाओ, और वहाँ जाओ, जहाँ लोग तुम्हारा स्वागत करते हैं। मेरे यहां तुम्हारे लिए कोई गुंजाइस नहीं है। तो ऐसे ढंग से करने वाला साधक तपोनिष्ठ बन जाता है। उसके लिए बड़ी-बड़ी चीज़ें, सब आकर खड़ी हो जाती हैं। वह बहुत आगे बढ़ सकता है। इस तरह से ये सब कृतित्व का ही लक्षण है। जैसे सबको नतमस्तक होना है। और लाभ लेना है उनसे, तो आते ही नतमस्तक होना चाहिए। और भी जो शक्ति का स्वरूप हैं माई-दाइयां इनको मन में अभिवादन करना। इनको मानना, इज्ज़त देना। यह अपनी इज्ज़त है। अगर कोई अपने से बड़ी है माई, तो उसे मन में आदर देना चाहिए, और उसे माता के समान आदर देना चाहिए। अगर हमारे बराबर की हैं, तो उन्हें भी प्रणाम करना चाहिए। और जो छोटी हैं, उन्हें बेटी जैसा मानना चाहिए, और उन्हें भी प्रणाम करना चाहिए। मन ही मन प्रणाम कर लेना चाहिए ये सब करने से साधक की काफी झंझट दूर हो जाती है। जो प्राकृतिक वायरलेस लगे हुए हैं, जो आदान-प्रदान हो रहा है। कुछ बुराइयाँ हो रही हैं, कुछ बुराइयों का परिणाम आने वाला है-उनसे निवृत्ति होती है। ऐसा करने से, उनसे निवृत्ति होती है।

जो मुझसे बड़ी है मेरी मां है, जो मेरी बराबर की है, मेरी बहन है, जो छोटी है मेरी बेटी है। माइयों के प्रति ऐसा भाव आवे-अगर आता है तो। और नहीं, एक अपने इष्ट को सबमें देखो। इष्ट को ही देखो। इष्ट में सबको देखो। इसके अलावा और कुछ देखने में आवे न। बस उसी को देखते रहो। हम स्त्री को क्यों देखें? अगर कोई स्त्री दिखाई पड़ी, तो हम स्त्री क्यों देखें? हम अपने गुरू को क्यो न पकड़ लें? एकदम बदल क्यों नहीं देते? हर एक में अपने इष्ट देव के स्वरूप को धारण करते हुए आगे बढ़ें।हर चीज़ में बदल दें। अगर ज़रूरत पड़े तो। और नहीं, तो स्थान तो निर्धारित ही है। और वह हृदय, ऐसी जगह है कि,

**"देखते-देखते क्या से क्या हो गया। और खुद ही बंदा खुदा हो गया।"**

इसलिए खूब भगवान का ध्यान करना चाहिए, और जिस जगह बताया गया, उसी जगह करना चाहिए। अगर उसमें एडजस्टिंग में कोई गड़बड़ी है, तो उसका सुधार करना चाहिए। और जब धीरे-धीरे अभ्यास हो जायेगा, और आदत पड़ जायगी, तो हम यह महसूस करेंगे, कि गुरु महराज प्रसन्न हैं, हमारे साधन से। हमारा मन

बताएगा। मन ही एक महान यंत्र है। जब पसंद किये हैं, तो हमको अधिकारी बना लिए हैं। और अधिकारी के लिए, इष्ट देव सब कुछ देने को तैयार रहते हैं। तो इसलिए शान्ति भी मिल जायगी। बलात् कोई विघ्न आने वाले हैं- वो भी टाल सकते हैं। विघ्न एक किनारे हो जाएंगे। आएंगे, तो उसका मतलब होगा। विघ्न आ भी सकता है। जैसे पांडवों को लाक्षागृह में जलाने का विघ्न आया। लेकिन प्रगति हुई। द्रोपदी मिली। अगर न वहां जाते, तो कहां मिलती। और भी, घटोत्कच मिला। सारी लड़ाई लड़ी-हजारों को मारा। अगर वो विघ्न न आते, तो ये कहां मिलते? इसलिए साधक के सामने विघ्न आना, यह बहुत ज़रूरी है। लेकिन वह बुरा न माने, तब अच्छा है। और अगर भले को भला मान लिया, बुरे को बुरा मान लिया, तो हम प्रकृति का जो नियम है, उसी में आ गए। यह जो रोज लड्डुवा-जलेबी खाते हैं- यह बाधा, है भगवान की तरफ से। यह लड्डुवा-जलेबी खिलाकर हमारी बुद्धि खराब न कर देना-ऐसे भगवान से प्रार्थना करना चाहिए। और जो दिक्कत आए, उपद्रव आए, परेशानी आए, तो उसमें खुश रहना चाहिए, कि मेरे अंदर जो ये चोर घुसे हैं-काम है, क्रोध है, लोभ है, मोह है- यह इन पर मार पड़ रही है। इनको भगाया जा रहा है। इनके ऊपर आपत्ति आ रही है। आत्मा के ऊपर आपत्ति नहीं आ रही। आत्मा को कभी रंज नहीं हो रहा है। वह तो निर्मल है, एकरस है, शुद्ध है, बुद्ध है, अजन्मा है, अलख है, अविनाशी है। उसमें न डांट पड़ती है, न गाली जाती है, न प्रेम जाता है। वह तो जैसे का तैसा है। आकाशवत है। शून्यवत है। उसमें कुछ लगता नहीं। जिन्हें लगता है, वो बेईमान लोग हैं। उसे बांध रखे हैं, कब्जा किए हैं ये काम क्रोध। यह जनरल विषय है। और जब हमें बुराई-बुराई न लगे। डांट हमें बुरी न लगे। हमें कोई बेवकूफ कहे, और बुरा न लगे। तो समझना चाहिए, अब ये विकार हट रहे हैं। इस तरीके से जो साधक समझता है, तो उसका प्राउड बहुत आगे जाता है। और अगर कमजोर है, तो वह बुरा मान जाता है। वह गड़बड़ा जाते हैं, कि हमको गाली दिया जा रहा है। हमको डांटा जा रहा है। हमारे ऐबों को पुचकारा जाय, तो कभी न निकलेंगे। ऐबों को मारना पड़ता है। कृष्ण ने कंस को मारा, पूतना को मारा, बकासुर को मारा, वत्सासुर को मारा। राम ने रावण को मारा, कुंभकर्ण को मारा, मेघनाद को मारा। और अगर मारा न जाय। अगर इनको पुचकार कर निकालें, कि भाई अब जाओ, अब मुझे छोड़ दो। अब जाओ, अब दूसरे के पास चले जाओ। तो ये नहीं जाएंगे। इसलिए इन्हें डांटना पड़ता है। और डांटना इसलिए फायदेमंद है, कि जो डांटने लायक है, वही डांटेगा। जब डांट पड़ती है, तो वह ऐब साधक के अंदर से झांकता है खिड़की से, कि यह जो डांट रहा है, इसके अन्दर भी तो हमारे बिरादर

बैठे होंगे–तो जब झांकते हैं, तो देखते हैं कि वहाँ तो सब मरे पड़े हैं, तो सोचते हैं कि अब ठीक नहीं, भागो। तो वो ऐब साधक के अंदर से निकल जाते हैं। इसलिए, डांट से फायदा होता है। और जब भगवान का घर मान लेगा। और भगवान सर्वत्र हैं। तो यह कैसे हम भूल जातेहैं कि ईश्वर है, व्यापक है। इसी में मस्त रहना चाहिए। या इतना भाव व्यापक नहीं आता, तो अपने इष्ट में रखो। जब बुराई आए तो बुराई का त्याग करके इष्ट के चरणों में पड़ जाओ। फिर, प्रार्थना करो क्षमा याचना करो। हे – भगवान क्षमा करें, मुझमें कमी है। मुझे बचाओ, इन दुष्टों से। त्राहि त्राहि, मैं परेशान हूँ। क्या आपके पास ऐसी क्षमता नहीं है, जो मुझे बचा सकें? ऐसे रोओ, गाओ अपने भगवान से। तरीका बस यही है। उसके प्रयोग करने की क्षमता अपने में होनी चाहिए। कैसे उसका प्रयोग करें? कैसे समय पर संभल जायें? अगर संभल गए तो मिनटों में सुधार हो सकता है।

यह जो शुद्ध अंहकार है, हृदय में– उसको ज्योतिर्लिंग कहते हैं और वह शंकर जी का रूप है। अहंकार शिव बुद्धि अज, मन शशि चित्त महान।। जलहली होती है, उसके बीच में स्थित शिव लिंग इसका महत्व स्मार्त सन्यास में बहुत बड़ा है। यहीं पर शंकर का निवास है। इसी जगह से गुरु शंकर का रूप लेता है। शंका जो होती है उसका (अरि) नाश करता है। इसलिए इस कमल को, अनाहत को, शंकर का स्थान कहते हैं। यह कमल बहुत महत्वपूर्ण है। और यह जो नाभिकमल है, मणिपूर इसमें विष्णु रहते हैं। और कंठकूप में ब्रह्मा और सरस्वती रहते हैं। इस प्रकार से इन तीनों देवों का निवास होता है। तो हृदय में ज्योतिर्लिंग मानी जाती है। अनेक हमारे ग्रथों में इसका बहुत बड़ा वर्णन आया है। अनेक ऋषि मुनि इसी में ध्यान करते हैं। यह सबसे बड़ा केन्द्र है, ध्यान के लिए। और यहीं से यह तर्कना रूपी ताड़का, जिससे यह मनरूपी मारीच और स्वभाव रूपी सुबाहु पैदा होते हैं, ये तर्कना–यहीं से मारी जाती है। इसी में जब विश्वास रूपी विश्वामित्र आ जाते हैं, तो यह तर्कना रूपी ताड़का मारी जाती है। तर्कना मारी गई, तहां मन कंट्रोल में आ जायगा। और जो यह स्वभाव है, साधना नहीं करने देता, यज्ञ नहीं करने देता यह सुबाहु, मारा जायगा। बिना तर्कना के मारे–बिना ताड़का के मारे, साधना नहीं हो सकती। हृदय बहुत महत्वपूर्ण होता है। इसमें प्रेम रूपी पार्वती है, सत्य रूपी शंकर है। जब हम प्रेम से सत्य को–प्रेम और सत्य को स्पर्श कराएंगे तो फिर शंकर की जितनी बातें हैं, वो आती जायेंगी। इस तरीके से जब हो जायगा, तब वह साधक आगे बढ़ सकता है। गुरु और शंकर में कोई अंतर नहीं। संत और शंकर में कोई अंतर नहीं। ये दो नाम हैं, और हैं एक। इसीलिए राम का जो भक्त होता है, वह

शंकर है, संत है। और शंकर का जो स्वामी है, वह राम है। अगर भक्त न होगा, तो राम की कदर कौन करेगा? भक्त ही तो दुनिया में राम को पुजाते हैं। इसीलिए शंकर, राम की पूजा करते हैं। और राम शंकर की पूजा करते हैं। अन्योन्याश्रित हैं। एक दूसरे के पूरक हैं, और अभिन्न हैं। शरीर नहीं रह जाता, तो राम रह जाता है। वही तो राम है। और उसी को गुरु बाबा के रूप में देख कर फिक्सेशन (दृढ़ीकरण) किया जाता है। सुबह बैठते ही यह कर लेना चाहिए। फिर धीरे-धीरे, उतरते-उतरते पैर के नख पर आ जाय और जो पका नख है बारीक बस उसको देखे। बस उसी में चित्त गड़ाओ, और मन को खड़ा कर दो वहीं। उसको ध्येय बना लो, और तुम मन से ध्यान करो-बस यह सबसे अच्छा ध्यान है। और जब ध्यान लगने लगेगा, तो वह ज्योतिर्लिंग बन जायगा। वही गुरु बाबा, ध्यान करते-करते शक्ति का प्रादुर्भाव करके, ज्योति का रूप ज्योतिर्लिंग तैयार कर देंगे। यह पीछे होती है- पहले नहीं होती। गुरु बाबा का ही ऐसा रूप बन जाता है। हमारे अंदर, जो सनातन रूप है आत्मा का, वही उदीयमान हो जाता है।

हरिः ओम